स्कन्द उपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से संबन्धित है। इसमें यह बताया गया है कि विष्णु और शिव में कोई भेद नही है तथा शिव और जीव में भी कोई भेद नही है। शरीर को मन्दिर माना है और अध्यात्म दर्शन को व्यवहारिक बनाने की दिशा दी है।

अच्युतोऽस्मि महादेव तव कारुण्यलेशतः।
विज्ञानघन एवास्मि शिवोऽस्मि किमतः परम्।।

हे महादेव, आपकी लेशमात्र कृपा से ही मै अच्युत (पतित या विचलित न होने वाला, अटल) हो गया हूँ, मै आपकी कृपा से विशिष्ट ज्ञान का पुंज एवं शिव (कल्याणकारी) स्वरुप बन गया हूँ। इससे अधिक और क्या हो सकता है।

न निजं निजवत् भाति अन्तःकरण जृम्भणात्।
अन्तःकरण नाशेन संविन्मात्र स्थितो हरिः।।

जब व्यक्ति अपने पार्थिव स्वरुप को भुलाकर अपने अंतःकरण का विकास करते हुए सबको अपने समान प्रकाशवान अनुभव करता है तब उसका अपना अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) समाप्त होकर वहां केवल ईश्वर ही स्थित रहता है।

संविन्मात्र स्थितश्च अहम् अजोऽस्मि किमतः परम्।
व्यतिरिक्तं जडं सर्वं स्वप्नवच्च विनश्यति।।

इससे अधिक क्या होगा कि मै स्वयं को आत्म रुप में स्थित और अजन्मा अनुभव करता हूँ। इस अनेभव के अतिरिक्त संपूर्ण जड़–जगत उसी प्रकार नाशवान है जिस प्रकार निद्रा की समाप्ति पर स्वप्न का नाश हो जाता है।

चिज्जडानां तु यो द्रष्टा सोऽच्युतो ज्ञानविग्रहः।
स एव हि महादेवः स एव हि महाहरिः।।

जो जड़–चेतन सब को इस प्रकार देखता है वही अच्युत (अटल) और ज्ञान स्वरुप है। वही महादेव शिव है और वही महाहरि (महान पाप हारक) विष्णु है।

स एव ज्योतिषां ज्योतिः स एव परमेश्वरः।
स एव हि परब्रह्म तद्ब्रह्माहं न संशयः।।

वही सभी ज्योतियों (प्रकाश मालाओं) की मूल ज्योति है, वही परमेश्वर है। वही परब्रह्म है, मैं भी वही ब्रह्म हूँ, इसमे संशय नही है।

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः।।

जीव ही शिव है और शिव ही जीव है। वह जीव केवल विशुद्ध शिव ही है। यह उसी प्रकार है जैसे छिलका लगे रहने पर व्रीहि (धान) कहा जाता है और छिलका उतार देने पर उसे तण्डुल (चावल) कहा जाता है।
{जीव विशुद्ध शिव ही है, केवल उस पर एक (अज्ञानजन्य) आवरण चढ़ा हुआ है।}

एवं बद्धस्तथा जीवः कर्मनाशे सदाशिवः।
पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।।

इस प्रकार बंन्धन में बँधा हुआ (चैतन्य तत्त्व) जीव होता है और वही (प्रारब्ध) कर्मों के नष्ट होने पर सदाशिव हो जाता है अथवा दूसरे शब्दों में पाश में बँधा जीव 'जीव' कहलाता है और पाशमुक्त हो जाने पर सदाशिव हा जाता है।

शिवाय विष्णुरुपाय शिवरुपाय विष्णवे।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।।

भगवान् शिव ही भगवान् विष्णुरुप हैं और भगवान् विष्णु भगवान् शिवरुप हैं। भगवान् शिव के हृदय में भगवान विष्णु का निवास है और भगवान् विष्णु के हृदय में भगवान् शिव विराजमान हैं।

यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि।
यथान्तरंन भेदाः स्युः शिवकेशवयोस्तथा।।

जिस प्रकार विष्णुदेव शिवमय हैं, उसी प्रकार देव शिव विष्णुमय हैं। जब मुझे इनमें कोई अन्तर नहीं दिखता, तो मैं इस शरीर में ही कल्याणरुप हो जाता हूँ। 'शिव' और 'केशव' में भी कोई भेद नहीं है।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत्।।

तत्त्व दर्शियों द्वारा इस देह को ही देवालय कहा गया है और उसमें स्थित जीवात्मा शिवरुप है। मनुष्य को चाहिए कि वह अज्ञानरुपी मलीनता का परित्याग कर दे और सोऽहं भाव से (अर्थात मैं वही शिव हूँ इस भाव से) शिव का पूजन (ध्यान) करे।

अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः।
स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।।

सभी प्राणियों में बिना किसी भेद के ब्रह्म का दर्शन करना यथार्थ ज्ञान है।
मन का विषयों से आसक्ति रहित होना यथार्थ ध्यान है।
मन के विकारों का त्याग करना यथार्थ स्नान है।
इन्द्रियों को अपने वश में रखना यथार्थ शौंच (शुद्धता) है।

ब्रह्मामृतं पिबेद्रैभ्क्षमाचरेद्देहरक्षणे।
वसेदेकान्तिको भूत्वा चैकान्ते द्वैतवर्जिते।
इत्येवमाचरेद्धीमान्त्स एवं मुक्तिमाप्नुयात्।।

ब्रह्मज्ञान रुपी अमृत का पान करे, शरीर रक्षा मात्र के लिए उपार्जन (भोजन ग्रहण) करे, एक परमात्मा में लीन होकर द्वैतभाव छोड़कर एकान्त ग्रहण करे। जो धीर पुरुष इस प्रकार का आचरण करता है, वही मुक्ति को प्राप्त करता है।

श्रीपरमधाम्ने स्वस्ति चिरायुष्योन्नम इति।
विरिन्चिनारायणशंकरात्मकं नृसिंह देवेश तव प्रसादतः।
अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तमव्ययं वेदात्मकं ब्रह्म निजं विजानते।।

श्री परमधाम वाले (ब्रह्मा, विष्णु, शिव देव) को नमस्कार है, (हमारा) कल्याण हो, दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो। हे विरन्चि, नारायण एवं शंकर रुप नृसिंह देव! आपकी कृपा से उस अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्त, अविनाशी, वेद स्वरुप ब्रह्म को हम अपने आत्म स्वरुप में जानने लगे हैं।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीवः चक्षुराततम्।।

ऐसे ब्रह्मवेत्ता उस भगवान् विष्णु के परम पद को सदा ही (ध्यान मग्न होकर) देखते हैं, अपने चक्षुओं में उस दिव्यता को समाहित किए रहते हैं।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदमित्येतन्निर्वाणानुशासनमिति वेदानुशासनमिति वेदानुशासनमित्युपनिषत्।।

विद्वज्जन ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर जो भगवान् विष्णु का परमपद है, उसी में लीन हो जाते हैं। यह सम्पूर्ण निर्वाण सम्बन्धी अनुशासन है, यह वेद का अनुशासन है। इस प्रकार यह उपनिषद् (रहस्य ज्ञान) है।